REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2024

रूसो के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन

सन्दीप सिंह राठौर
(सहायक प्राध्यापक) राज बहादुर सिंह डिग्री कॉलेज , लखना , इटावा, उत्तर प्रदेश

सारांश :

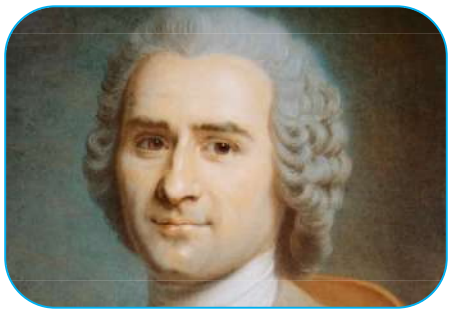

''शिक्षा मानव की शक्ति का, विशेषतया, मानसिक शक्ति का सामान्यतया विकास करती है। जिससे वह परम सत्य, शिवं तथा सुन्दरम् का चिन्तन् करने योग्य बन सकें।'' अरस्तु के अनुसार इस प्रकार की शिक्षा बालक के व्यक्तित्व के विकास में सहायता करती है शिक्षा के आधार पर ही बालक पर्यावरण में सामंजस्य स्थापित करने में सफल होता है। अतः मानव जीवन में शिक्षा का विशेष महत्व है।

प्रकृतिवादी विचारकों ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। उनका मत था कि शिक्षा अध्यापक के हाथों से संचालित की जाने वाली प्रक्रिया नहीं है। वरन् उसका संगठन व्यक्ति या बालक के अनुकूल किया जाना चाहिए। साथ ही यह विचारधारा भौतिक जगत की सार्थकता में विश्वास रखती है और आध्यात्मिक जगत की अवहेलना करती है। शिक्षा का कार्य किसी भी तथ्य का कृत्रिम ज्ञान देना नहीं है वास्तविक ज्ञानार्जन प्रकृति पर निर्भर करता है, इस कारण प्रकृति अनुकरण ही ज्ञान प्राप्ति का सर्वोत्तम तरीका है। एडम्स ने कहा है, ''प्रकृतिवाद शैक्षिक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करना या किताबी ज्ञान को प्रदान करने वाली कोई अवस्था नहीं है वरन् यह बालक के अनुकूल शिक्षा को ढालन की एक प्रक्रिया है जो बालक को कृत्रिम जीवन से प्राकृतिक जीवन की ओर ले जाती है इसी कारण प्रकृतिवाद के अन्तर्गत प्राकृतिक नियमों को शिक्षा में अपनाने का प्रयास किया जाता है ।

पश्चिमी विचारक रूसो, प्राकृतिक शिक्षा से प्राकृतिक मानव का विकास करना चाहता है रूसो के अनुसार प्राकृतिक मानव वह है जो सामाजिक बन्धनों के अनुसार नहीं चलता है अपितु अपने स्वभाव के अनुसार जीवन व्यतीत करता है। **रूसो उस शिक्षा को प्राकृतिक शिक्षा कहता है ''जो उसे प्राकृतिक पर्यावरण से मिलती है । उसके अनुसार यही सच्ची शिक्षा है इस प्रकार रूसो प्राकृतिक शिक्षा के द्वारा बालक का आन्तरिक विकास करना चाहता है।''**

रूसो के शैक्षिक विचारोंका अध्ययन कर शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग ही इस शोध पपत्र का औचित्य है।

संकेत शब्द – प्रकृतिवादी , रूसों , एमिल,शैक्षिक विचार

रूसो की शैक्षिक विचारधारा –

1.1 शिक्षा का अर्थ

रूसो शिक्षा को प्राकृतिक क्रिया मानते थे। इनका स्पष्टीकरण था कि सीखना मनुष्य की जन्मजात प्रकृति है उसे अपनी प्रकृति के अनुसार ही सीखने देना चाहिए। अतः रूसो के शब्दों में –**''शिक्षा अन्दर से**

होने वाला विकास है, बाहर से एक साथ होने वाली वृद्धि नहीं, यह प्राकृतिक मूलप्रवत्तियों के क्रियाशील होने से विकसित होती है, बाह्य शक्तियों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप नहीं।''

1.1.1 शिक्षा बाल–केन्द्रित –

रूसो का विचार था कि शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिए। शिक्षा का कार्य उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल बालक की विकास अवस्था को ध्यान में रखकर किया जायें। वह लिखता है, प्रकृति बालक को बालक के रूप में ही देखना चाहती है, मनुष्य के रूप में नहीं। इससे अधिक क्या मूर्खता होगी कि हम अपनी प्रवृत्तियों एवं इच्छाओं को बालकों के लिए प्रयुक्त करें । इसीलिए उसने कहा, 'बालक का प्रारम्भ से ही पूर्ण रूप से अध्ययन करों।

1.1.2 सुनियोजित शिक्षा व्यवस्था – रूसो के विचार से शिक्षा ऐसे ढंग से दी जायें जो व्यक्ति की सामाजिक दुर्बलताओं और दुर्गुणों को दूर करें तथा उनमें जागृति एवं चेतना के भाव उत्पन्न कर सकें।

रूसो ने दो प्रकार की शिक्षा व्यवस्थाओं को प्रस्तावित किया है –

प्रथम – मानव की प्रकृति के अनुसार शिक्षा हो। ऐसी व्यवस्था में शिक्षा देना एक सरकारी कार्य होना चाहिए और हर बालक को राज्य के द्वारा शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। रूसो का कहना था – 'शिक्षा राज्य का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। राष्ट्रीय शिक्षा स्वतन्त्रत लोगों का हक है।''

द्वितीय – शिक्षा वर्तमान सभ्यता के अनुसार होनी चाहिए । रूसो उच्च वर्ग के लोगों के लिए शिक्षा की हिमायत करता था उसके अनुसार निम्न वर्गो को शिक्षा आवश्यकता नही थी।

1.1.3 जन–शिक्षा की आवश्यक –

रूसो जन शिक्षा के बड़े हिमायती थे इन्होंने प्रारंभ से ही जन शिक्षा पर जोर दिया ।

रूसो का विचार था कि अच्छे राज्य की स्थिरता केवल अच्छी शिक्षा द्वारा ही सम्भव है अंधविश्वास को हटाने तथा जनता के मध्य से भेद–भाव दूर करने के लिए जनसामान्य को शिक्षित करना आवश्यक समझा। उसका विश्वास था कि शिक्षित जनसमूह में चेतना जागृत होगी और वे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व के लिए जागरूक होंगे। इससे स्पष्ट होता है कि रूसो ने शिक्षा को राज्य का दायित्व माना तथा व्यक्ति की भी प्रमुखता प्रदान की। तथा वह जनतांन्त्रिक व्यवस्था को शिक्षा के क्षेत्र में लाने के पक्ष में था।

1.1.4 समाज की अपेक्षा व्यक्ति की महत्ता –

शिक्षा में व्यक्तिवाद का सबसे प्रसिद्ध समर्थक रूसो था उसने 'एमील' में व्यक्ति की आवश्यकता एवं हित को समाज से अधिक माना। वह कहता है समाज के हित में व्यक्ति का बलिदान नहीं करना चाहिए। समाज की कलुष भावनाओं के कारण उसका कहना था, ''व्यक्ति व्यक्ति को नहीं पहचानता, धनी निर्धन को पीसता है। शासक शासित के साथ बुरा व्यवहार करता है'' इस प्रकार रूसो ने तत्कालीन समाज की कटु आलोचना की । रूसो में इस प्रकार की भावनाओं का मूल कारण उसके वैयक्तिक विचार एवं परिस्थितियाँ भी समाज के प्रतिकूल व्यवहार के कारण उसकी धारणा व्यक्तिवादी शिक्षा की ओर हो गई। अतः उसने प्रकृति के एकान्त नीड़ में, समाज से दूर बालक की शिक्षा–व्यवस्था पर बल दिया।

1.1.5 शिक्षा के दो पक्ष –

रूसो ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा के दो रूपों का समर्थन किया

अ सकारात्मक (निश्चयात्मक) शिक्षा– रूसो के अपने शब्दों में निश्चयात्मक शिक्षा वह शिक्षा है ''जो मनुष्य के विकास से पहले उसके मस्तिष्क का विकास करती है और बच्चों को प्रौढ़ों के कर्तव्यों से परिचित कराती है।''

निश्चयात्मक शिक्षा में मनुष्य की प्रकृति को बुरा समझा जाता है, इसीलिए वह कठोर दण्ड देकर उसका सुधार करने के पक्ष में है रूसो इस विचार का विरोधी था। वह मानव की प्रकृति को साधु मानता था तथा निश्चयात्मक शिक्षा का विरोध करता था वस्तुतः निश्चयात्मक शिक्षा से रूसो का तात्पर्य ''अध्यापक द्वारा पुस्तकीय एवं शब्दिक ज्ञान देने, उन्हें कर्तव्यपरायणंता, नैतिकता,नागरिकता तथा उत्तम गुणों एवं आदतों के निर्माण पर बल देने से था।''

ब. निशेधात्मक शिक्षा –

रूसो का मत था कि जन्म से 12 वर्ष की आयु तक बालकों को सर्वथा निषेधात्मक शिक्षा देनी चाहिए मैं उसे निषेधात्मक शिक्षा कहता हूँ, ''जो ज्ञान देने के पहले ग्रहण करने वाले अंगों को दृढ़ बनाती है और इन्द्रियों के उचित उपयोग से विवके शक्ति को बढ़ाती है निषेधात्मक शिक्षा का तात्पर्य आलस्य में समय बिताना नहीं है, वह इससे बहुत दूर है वह गुण प्रदान नहीं करती, बल्कि दुर्गुणों से बचाती है।'' वह सच बोलना नहीं सिखाती, बल्कि झूठ से बचाती है वह बालक को सत्य की ओर तक नहीं ले जाती, जब तक कि उसमें सत्य को पहचानने और उससे प्रेम करने की शक्ति उत्पन्न नहीं हो पाती।''

निशेधात्मक शिक्षा के अर्न्तगत निम्नलिखित बातों का विशेष महत्व है –

1. **पुस्तकीय शिक्षा का विरोध –** रूसो ने बालकों के लिए पुस्तकों को अहितकर बताया है । वह कहता है ''पुस्तकें बालक और वस्तुओं के बीच में व्यवधान डालती है और उसे अनुभव द्वारा सीखने नहीं देती '' रूसो कहता है कि ''अपने छात्र को मौखिक रूप से कुछ न पढ़ायें, उसे अनुभवों से स्वतः सीखने का अवसर दीजिये''। ''पढ़ना बच्चों के जीवन का अभिशाप है बच्चों के पुस्तकीय पाठ से मुक्ति के फलस्वरूप, बच्चों के दुःखी होने का मुख्य कारण ही समाप्त हो जायेगा।'' ''पुस्तकों के प्रति मुझे घृणा है। वे हमें उन विषयों पर बात करना सिखलाती है, जिनके सम्बन्ध में हम सर्वथा अनभिज्ञ होते है''
2. **आदतों का बहिष्कार –** बालक को किसी भी प्रकार की आदत का दास नहीं होने देना चाहिए । वह कहता है कि 'कोई भी आदत न डालना ही उसकी एकमात्र आदत होगी।''
3. **प्रत्यक्ष नैतिक सिद्धान्तों का अभाव –** रूसो बालक को केवल एक ही उपदेश देता है कि 'किसी को कष्ट मत दो'। इसके अतिरिक्त वह बालक को किसी प्रकार का उपदेश देने के पक्ष में नहीं है उनका कहना है कि अनुकरणीय कार्यो के परिणाम ही उसे सही मार्ग दिखा देगें अर्थात यदि बालक आग में हाथ डालता है तो डालने दो, जलने पर स्वंय जान जाएगा। कि भविष्य में ऐसा नहीं करना चाहिए। इस प्रकार से प्राप्त की हुई शिक्षा उसके लिए स्थायी और लाभप्रद सिद्ध होगी। इसीलिए वह कहता है । ''धर्म और नैतिकता का भार बालक पर मत डालो, अवसर आने पर वह उसे स्वंय सीख लेगा''।
4. **सामाजिक सम्बन्धों की उपेक्षा –**रूसो अपने समकालीन समाज से प्रचलित कुरीतियों से बालक की रक्षा करना चाहता है। इसीलिए उसने 'एमिल' की शिक्षा की व्यवस्था समाज से दूर एकान्त में निर्दिष्ट की। वह बालक को उस समय तक समाज में प्रवेश करने की आज्ञा नही देना चाहता था जब तक कि बालक का ज्ञान परिपक्व नहीं हो जाता। उसका विचार था कि बालक की कोमल भावनाओं पर प्रभाव डालकर समाज उन्हें नष्ट कर देता है अतः बालक को समाज से दूर रखना चाहिए।
5. **समय बचाने की शिक्षा का निशेध –** रूसो कहता है कि शिक्षा में प्रत्येक प्रकार के निर्देश, टाइम टेबिल, नियम, अनुशासन तथा समय के सदुपयोग आदि की आलोचना करते हुए रूसो ने लिखा है '' यह काल समय का उपयोग करने का नहीं, अपितु समय खोने का है।''
6. **शिक्षक की आवश्यकता –** रूसो बालक के नैसर्गिक विकास में अध्यापक के हस्तक्षेप को सही नहीं मानता था अध्यापक के प्रति रूसो का कथन है – 'अपने शिष्य को शब्दिक पाठ न पढ़ाकर उसे यथासम्भव क्रिया द्वारा शिक्षा दीजिये। जब क्रिया द्वारा शिक्षण प्रायः असम्भव हो तभी शब्दों का सहारा लिया जाये।'' रूसो बालक को अध्यापक के लिए एक पुस्तक मानता है। जिसका गूढ़ अध्ययन ही उसका मुख्य कार्य है ।
7. **शारीरिक शिक्षा –** शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में निबधि शिक्षा का तात्पर्य यही है कि बालक स्वतन्त्र रूप से खेले, कूदे, विचारे, कार्य करें, सादा भोजन करें एवं साधारण कपड़े पहने। यह स्वास्थ्य –सम्बन्धी कृत्रिम

उपचार का पक्षपाती नहीं है वह चाहता है कि बालक को खुली वायु में विचरण करने एवं ज्ञानेन्द्रियों को विकसित होने का अवसर मिलें।

1.2 शिक्षा के उद्देश्य –

रूसो समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व देते थे इसलिए इन्होंने कहा ''कि हमें किसी बच्चे को सैनिक, पादरी अथवा मजिस्ट्रेट बनाने से पहले उसे आदमी बनाना चाहिए''। वह आदमी प्राकृतिक आदमी होगा और भाव प्रधान आदमी होगा। वह सबसे प्रेम करेगा और सबका सहयोग करेगा। वह झूठ, दम्भ, स्वार्थपरता के दोषों से मुक्त होगी। इसके लिए इन्होंने मनुष्य की नैसर्गिक शक्तियों के प्राकृतिक विकास की बात कहीं है इनके अनुसार शिक्षा का यही उद्देश्य होना चाहिए।

रूसो ने 'एमील' की आयु को दृष्टिगत रखते हुए बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य है –

1.2.1 शैशवावस्था – जन्म से 5 से 10 वर्ष तक की अवस्था है। इसमें शिक्षा का मुख्य उद्देश्य शारीरिक विकास है। यह शारीरिक विकास बालक के अंग –प्रत्यंग के विकास से हो सकता है, जिससे कि वह पूर्ण रूपसे स्वस्थ्य और शक्तिशाली हो जायें। यह शारीरिक स्वास्थ्य ही बालक के मानसिक स्वास्थ्य का आधार होता है।

रूसो स्वस्थ्य शरीर को नैतिक उत्थान की नींव मानता है। अतः वह कहता है। ''माता–पिता का कर्तव्य है कि शिशु को हष्ट–पुष्ट तथा स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करें। 'कमजोर शरीर में मस्तिष्क भी कमजोर होता है दुर्बलता अनेक बुराईयों को जन्म देती है। बालक जितना ही निर्बल होगा उतना ही अधिक दूसरों पर शासन करने का प्रयत्न करेगा और जितना ही स्वस्थ्य होगा उतना ही आज्ञाकारी होगा।''

1.2.2 बाल्यावस्था– यह 5 से 12 वर्ष तक की अवस्था है। इस अवस्था में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक की ज्ञानेन्द्रियों का विकास करना है। ज्ञानेन्द्रियों का विकास अनुभव से होगा। अरस्तु बालक को अपने परिवेश में ऐसी चीजों का प्रत्यक्ष अनुभव करने का अवसर दिया जाना चाहिए, जिससे कि उसकी ज्ञानेन्द्रियों का विकास हो सकें।

1.2.3 किशोरावस्था– एमील की यह अवस्था 12 से 15 वर्ष तक मानी गई है। इस आयु में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य किशोर व्यक्ति को नाना प्रकार का उपयोगी और आवश्यक ज्ञान दिया जाना चाहिए, जिससे वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

रूसो कहते है कि जब बच्चे की इन्द्रियों प्रशिक्षित हो जाऐगी तो वह स्वानुभव द्वारा स्वयं सत्य की खोज करेगा और इस प्रकार उसका बौद्धिक विकास होगा। इसे भी वे शिक्षा का एक उद्देश्य मानते थे। इनके विचार से किशोरावस्था पर इस उद्देश्य की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। ये कहते थे कि किशोरावस्था पर बच्चों को ऐसा पर्यावरण देना चाहिए कि वे परिश्रम करें अध्यवसाय करें, अन्वेषण में रूचि ले और स्वानुभव द्वारा ज्ञान का विकास करें।

1.2.4 युवावस्था – यह काल 15 से 20 वर्ष तक माना जाता है इसमें शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भावनाओं का विकास करना है, क्योंकि जैसा कि रूसों ने लिखा है, ''हमने उसके शरीर , उसकी इन्द्रियों और उसकी बुद्धि का निर्माण किया है और उसे एक ह्रदय देना शेष रह जाता है'' भावनाओं के विकास से नैतिक और सामाजिक गुणों का विकास होगा। इनके साथ–साथ धार्मिक भावनाओ का विकास भी आवश्यक है। इस प्रकार शिक्षा का लक्ष्य बालक के शरीर, इन्द्रियों, बुद्धि और समाजिक, नैतिक और धार्मिक भावनाओं का विकास है।

1.3 शिक्षा का पाठ्यक्रम –

रूसो ने शिक्षा के पाठ्यक्रम को विकास की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में बाटॉ है। जिसका वर्णन निम्नलिखित रूप से किया जा रहा है –

1.3.1 शैशवावस्था –

इस आयु में बातचीत से ही बालक को बहुत कुछ सिखाया जा सकता है और बातचीत के लिए उसकी स्वभाविक मातृभाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए, इससे बालक की भाषा शक्ति का विकास होगा। इस आयु में बालक में किसी भी प्रकार की आदत डालना उचित नहीं है।

इस आयु स्तर के बच्चों के लिए ये किसी भी प्रकार के निर्देशन अथवा पुस्तकीय ज्ञान का विरोध करते थे।

1.3.2 बाल्यावस्था–

रूसो बाल्यावस्था को उसके जीवन का सबसे नाजुक समय समझता है जबकि वह शरीर की आवश्यकता को प्रधानता देता है तथा उसमें नैतिक विचार गौण होते है। यह समय ज्ञानेन्द्रियों जैसे हाथ, पैर, आँख, कान, जिह्वा आदि को शिक्षित करने का है, और बालक के विभिन्न अंगों को कसरत करने का है, यह समय तैरना, कूदना आँखो द्वारा ऊँचाई एवं दूरी का अनुभव प्राप्त करने का है। गीतों द्वारा कान इन्द्रियों को चेतन्मय बनाने का है।

1.3.3 किशोरावस्था –

इस अवस्था में बालक अपने को शक्तियुक्त, सुन्दर एवं स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न करता है रूसो कहता है, **''यह बौद्धिक शिक्षा एवं परिश्रम, निर्देशा तथा आशा का काल है।''** इस काल की शिक्षा का उद्देश्य है कि एमील को उपयोगी तथा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में सहायता दी जायें।

1.3.4 युवावस्था–

इस समय तक एमील के शरीर, इन्द्रिया तथा बुद्धि का विकास हो चुका है। नवयुवावस्था में उसके ह्रदय का भावात्मक विकास आरम्भ होता है अब उसे समाज के योग्य बनाने के लिए शिक्षित करना आवश्यक है उसे सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देनी चाहिए। इस अवस्था में शिक्षित करने का साधन होगा मानव–समाज से सम्पर्क स्थापित करना किन्तु शिक्षा व्यावहारिक ढंग से ही दी जायेगी, शब्दिक और सैद्धान्तिक नहीं।

1.4 रूसो की शिक्षण विधियाँ –

रूसो ने अपनी शिक्षा–योजना में बालक की अवस्थाओं का ध्यान रखते हुए विभिन्न विधियों द्वारा शिक्षा प्रदान करने का अयोजन किया है –

1.4.1 प्रकृति की गोद में शिक्षा – 'प्रकृति की ओर लौटो' इनका सबसे पहला नारा था। इन्होंने इस बात पर बहुत बल दिया कि बच्चों की शिक्षा प्रकृति की गोद में होनी चाहिए और उनकी अपनी प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए।

1.4.2 स्वानुभव – रूसो के अनुसार बच्चों को स्वयं के अनुभवों द्वारा सीखना चाहिए । स्वयं करके सीखना इनका दूसरा नारा था।

स्वानुभव पर बल देते हुए रूसो का कथन है कि अपने विद्यार्थियों को शाब्दिक पाठ मत पढ़ाओं बल्कि वह वास्तविक अनुभव के ही द्वारा पढ़ाया जायें। स्वानुभाव में प्रकृति प्रयोगशाला के रूप में काम करती है अतः प्रकृति के पदार्थ एंव क्रियाओं का अध्ययन इसी विधि से पढ़ाया जाना चाहिए।

1.4.3 ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग –

रूसो ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान का द्वार मानते थे। इनके अनुसार पहले ज्ञानेन्द्रियों का विकास करना चाहिए, ज्ञान का विकास तो उनके द्वारा फिर स्वंय हो जाएगा। शिक्षण करते समय बच्चों की ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग पर ये बहुत बल देते थे। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा इनका तीसरा नारा था।

1.4.4 स्वतन्त्रता पूर्ण अध्ययन– रूसो बच्चो को किसी भी प्रकार के नियत्रण में रखने का विरोध करते थे। इनका कहना था कि बच्चों को अपने प्राकृतिक विकास की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। शिक्षा में स्वतन्त्रता इनका चौथा नारा था

1.4.5 आवश्यकतानुसार शिक्षा –

रूसो से पहले बच्चों को छोटा प्रौढ़ माना जाता था रूसो ने इसका विरोध किया। इन्होंने स्पष्ट किया कि एक बच्चे की रूचि, रूझान, योग्यता और आवश्यकताऐं प्रौढ़ व्यक्ति की रूचि, रूझान, योग्यता और आवश्यकताओं से भिन्न होती है। रूसों के अनुसार बच्चों को अपनी योग्यता, रूचि, रूझान और आवश्यकता अनुसार सीखने देना चाहिए। यह इनका पॉचवा और अन्तिम नारा था।

1.4.6 अन्वेशण विधि –

'रूसो की खोज–प्रणाली अन्वेषण की विधि है, उसका विचार था कि प्रकृति निरीक्षण द्वारा बालक के अन्दर जिज्ञासा उत्पन्न होगी और वह उस रहस्य को जानने के लिए अन्वेषण – विधि का प्रयोग करेगा।

1.4.7 स्वाध्याय –

रूसो स्वाध्याय पर बल देते हुए लिखता है, 'स्वाध्याय एकमात्र स्वाध्याय ही होना चाहिए। इसी के द्वारा चिन्तन को प्रेरणा मिलती है। और बालक स्वंय ज्ञान की खोज में लग जाता है। और स्वाध्याय से ही सत्य ज्ञान प्राप्त होता है।

1.5 अनुशासन –

रूसो, प्राचीन परम्परा में प्रचलित दमनात्मक अनुशासन के विपरीत स्वतंन्त्रता के आधार पर आन्तरिक अनुशासन के पक्ष में था उसका कहना था कि आन्तरिक अनुशासन तभी आ सकता है जब विद्यार्थी की इच्छित स्वीकृति प्राप्त हो और स्वयं अपने से उचित बातों के औचित्य एवं आवश्यकता को स्वीकार करता हो। रूसो अनुशासन का सम्बन्ध आचरण के अनन्ततम आधारों से मानता है।

1.6 शिक्षक

रूसो तो यह मानता है कि अध्यापक का स्थान 'पर्दे के पीछे' होता है वह तो मंच की व्यवस्था करने वाला हैं अर्थात् अध्यापक बालक के उचित विकास हेतु वातावरण की रचना करता है और उस वातावरण में विकसित होने हेतु बालक को स्वतन्त्र छोड़ देता है और आवश्यकतानुसार बालक का सहयोग करता है।

समाज के विरोध में रूसो ने सामाजिक प्राणी शिक्षक को भी दोषपूर्ण बताया है और बच्चे की शिक्षा से उसे हटा देने की बात कही। परन्तु यह तो इनका विरोध मात्र था एमील की शिक्षा में परिवार, विद्यालय, एवं शिक्षक के महत्व को इन्होंने स्वीकार किया, परन्तु शिक्षक को रूसो अनुदेशक के रूप में कभी नहीं देखना चाहते । रूसो कहते है कि 'शिक्षक का कार्य बच्चे के प्राकृतिक विकास में सहायता प्रदान करना है, वह अनुदेशन नहीं देगा अपितु बच्चें के लिए पर्यावरण तैयार, करेगा, वह उपदेश नहीं देगा, अपितु बच्चे को स्वयं करने एवं स्वयं देखने और स्वयं निर्णय निकालने के अवसर देगा, वह उनका नियन्त्रक नहीं, सहायक होगा।

1.7 शिक्षार्थी –

रूसो शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्व विद्यार्थी को देता है। इन्होंने बच्चे के नैसर्गिक प्रवृत्तियों के स्वाभाविक विकास को ही शिक्षा की संज्ञा दी। इन्होंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वाभाविक विकास करने के अवसर देने चाहिए, उन्हें किसी प्रकार के बन्धन में न रखा जाऐं। बच्चों को अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। यहाँ तक कि इन्होंने सामाजिक नियम एवं नैतिक आचरण के बन्धनों से भी बच्चों को मुक्त रखने की बात कहीं है। रूसो ने शिक्षार्थी को शिक्षा को केन्द्र बना दिया और उसकी पूरी शिक्षा का विधान उसकी जन्मजात शक्तियों, रूचियों एवं आवश्यकताओं अनुकूल किया। इन्होंने स्पष्ट किया कि भिन्न–भिन्न आयु वर्ग के

बच्चों की शक्ति, रूचि एवं रूझान भिन्न–भिन्न होती है अतः भिन्न–भिन्न आयु स्तर पर भिन्न–भिन्न प्रकार की शिक्षा का नियोजन होना चाहिए।

1.8 विद्यालय

रूसो अपने समय के समाज एवं सामाजिक संस्थाओं से बड़े असंतुष्ट थे। इन्होंने अपने समय के विद्यालयों की व्यवस्था को भी दोषपूर्ण बताया और उनका विरोध किया। इन्होंने 'प्रकृति की ओर लौटो' का नारा देते हुए कहा कि समाज और उसकी सभ्यता समस्त बुराईयों कि जड़ है इसीलिए बच्चों को उसके कुप्रभावों से दूर रखना चाहिए। इस प्रकार विद्यालय को ये समाज से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थापित करने के पक्ष में थे। इन्होंने इस बात पर बहुत बल दिया कि विद्यालयों में बच्चों को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए, उन्हें किसी भी प्रकार के नियन्त्रण में नहीं रखना चाहिए। विद्यालयों की समय सारणी को भी इन्होंने एक बन्धन बताया और कहा कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, बच्चे किसी भी समय कुछ भी कार्य करने के लिए स्वतन्त्र होने चाहिए। रूसो के अनुसार शिक्षकों को विद्यालयों का पर्यावरण इतना सरल, मधुर एवं शुद्ध रखना चाहिए कि बच्चे अपना स्वाभाविक विकास कर सकें।

रूसो ने हर स्थान पर सामाजिक संस्थाओं की अवहेलना की है वह कहता है कि, ''मानवीय संस्थायें' मूर्खता एवं विरोधाभास के समुह है''

शिक्षा के अन्य पक्ष

1.9 स्त्री शिक्षा –

रूसो के स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विचारों में प्रगतिशीलता का अभाव मिलता है। उसके अनुसार स्त्री एवं पुरूष में जन्मजात वैषम्य है। रूसों के अनुसार ''एक शिक्षित एवं सभ्य स्त्री अपने पति, बच्चें एवं पूरे परिवार लिए प्लेग के रोग के समान है''

अतः वह शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों के प्रति बड़ा अनुदार है। वह उन्हें कड़े नियत्रंण में रखने की सम्मति देता है वह किसी भी स्त्री का स्वतन्त्र विकास नहीं चाहता है।

धार्मिक शिक्षा –

जब तक पढ़ने लिखने में उनकी (स्त्रियों) स्वयं कोई रूचि न हो, तब तक पढ़ाना व्यर्थ है। उनका विचार था कि स्त्रियों में स्वाभाविक रूप से पढ़ने–लिखने में रूचि नहीं होती। वह लड़कियों को कठोर बन्धन में रखना चाहता था, जबकि दूसरी ओर लड़कों को पूर्ण स्वतंत्रता देता था। इस सब में रूसो का उद्देश्य यही था कि स्त्रियाँ स्वयं साध्य नहीं है, बल्कि पुरूष की उन्नति का साधन है।

1.10 माता–पिता की भूमिका –

बालक की शिक्षा प्रकृति एवं परिवार से आरम्भ होती है

रूसो का कहना था कि ''एक सन्तुलित पिता और माता अपने बालक की एक अत्यन्त कुशल शिक्षक से कही अधिक उत्तम ढंग से पढ़ा सकते है। पिता को अपने पुत्रों को और माता को अपनी पुत्रियो को पढ़ाना चाहिए।''

निष्कर्ष -

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि रूसों ने **शिक्षा के सभी पक्षों पर अपने स्वतन्त्र विचार प्रस्तुत किये तथा शिक्षा को सार्थक एवं उपयोगी बनाने हेतु सुझाव दिये। यदि उनके शैक्षिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में नवीन शैक्षिक प्रणाली की सरंचना की जाए जो भारतीय शिक्षा को सही दिशा दी जा सकती है तथा विभिन्न स्तरों पर आने वाली शैक्षिक समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना किया जा सकता है।**

सन्दर्भ ग्रन्थ : सूची

1. लाल, प्रो0 रमन बिहारी एवं पलोड़, श्रीमती सुनीता, 2010, ''शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग'' आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ, पृ0स0 (134–151)।

2. शर्मा, एन0आर0, (2007), ''फिलोसफी एण्ड सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन'' सुरजीत पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ.सं., (88–94)। राधा प्रकाशन मन्दिर प्रा0लि0, आगरा, पृ0स0 (30–32)।
3. शर्मा, गणपतिराय एवं व्यास हरिशचन्द्र व्यास, (2008), ''उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ0सं0 (313–327)।
4. शर्मा, श्रीमती आर0के0, दुबे, श्री कृष्ण एवं शर्मा हरिशंकर, (नवीनतम् संस्करण) ''शिक्षा के दर्शनशास्त्री आधार'' राधा प्रकाशन मन्दिर प्रा0लि0, आगरा, पृ0सं0 (128–140)।
5. शर्मा, डॉ रामसिंह एवं श्रीवास्तव, डॉ0 रूपाली, (2007) ''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार'' संजय पब्लिकेशन, आगरा पृ0सं0 (192–204)। आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ, पृ.सं., (116–131)।
6. शर्मा, योगेन्द्र कुमार एवं शर्मा मधुलिका, (2009), ''शिक्षा के दार्शनिक आधार'' कनिष्स पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ0 सं0 (92–121)
7. शर्मा, डॉ0 ओ0पी0, (2007–2008), ''शिक्षा के दार्शनिक आधार'', अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, पृ0स0 (296–306)।
8. शर्मा, रामनाथ एवं राजेन्द्र कुमार शर्मा, (2008), ''शिक्षा दर्शन'' एटलाटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृष्ठ संख्या (118–129)।
9. साहू, भागीरथी, (2002), ''द न्यू एजुकेशन फिलॉसफी'' स्वरूप एण्ड सन्स, नई दिल्ली, पृ0सं0 (192–204)
10. सैनी, डॉ0 रामगोपाल, (1998) ''उदयोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षा के नए आयाम'', एच0पी0, भार्गव बुक हाऊस, आगरा, पृ0सं0 (572–584)।
11. सक्सैना, एन0आर0 स्वरूप एवं चतुर्वेदी, शिखा, (2007), ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा'' आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ, पृ0सं0 (193–210)।
12. सक्सैना, एस आर स्वरूप, चतुर्वेदी, डॉ0 श्रीमती शिखा चतुर्वेदी एवं पाण्डेय, डॉ के0पी0, (2001) ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक'' आर लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ.सं., (41–54)।
13. सक्सैना, एन0आर0 स्वरूप एवं पाण्डेय, डॉ0के0पी0, (2009) ''शिक्षा दर्शन एवं पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षाशास्त्री'' आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ, पृ.स. (44–57)।
14. सिंह डॉ वी0के0 एवं नाथ, श्रीमती रूचिका (2007) ''एजूकेशनल इन इमरजिंग इंडियन सोसायटी'' एन0पी0एच0 पब्लिशिंग कॉरपुरेशन, नई दिल्ली, पृ0स0 (108–117)।
15. जैन, अन्जू (1985), ''शिक्षा के दार्शनिक आधार' कुमार पब्लिकेशन, आगरा।
16. पाण्डेय, रामशकल, (2007), 'विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री', विनोद पब्लिकेशन, आगरा।
17. माथुर एस0एस0, (1988), ''शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक अध्ययन, विनोद पब्लिकेशन, अगारा – 2।
18. लाल, रमन बिहारी, (2004), ''शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ पब्लिकेशन, मेरठ ।
19. सक्सैना, एन0आर0 स्वरूप, (1982), शिक्षा के दार्शनिक आधार'', कुमार पब्लिकेशन, आगरा।
20. श्रीवास्तव, डी0एन0 (1984), 'अनुसंधान विधियाँ', साहित्य प्रकाशन, आगरा।